शिक्षकों की कलम से

विगत कुछ अंकों से हमने एक नया कॉलम शुरू किया है जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार तीन अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, आपसे एक छोटी-सी अपेक्षा होगी कि आप अपने अनुभवों को भी हमारे पास ज़रूर भेजिए।

1. जवाब देने से भी ज़रूरी है ..... मोहम्मद ज़फर
2. कई नाम थे उसके ..... ईशा भट्ट
3. कक्षा में सीखना-सिखाना ..... श्रीदेवी वेंकट

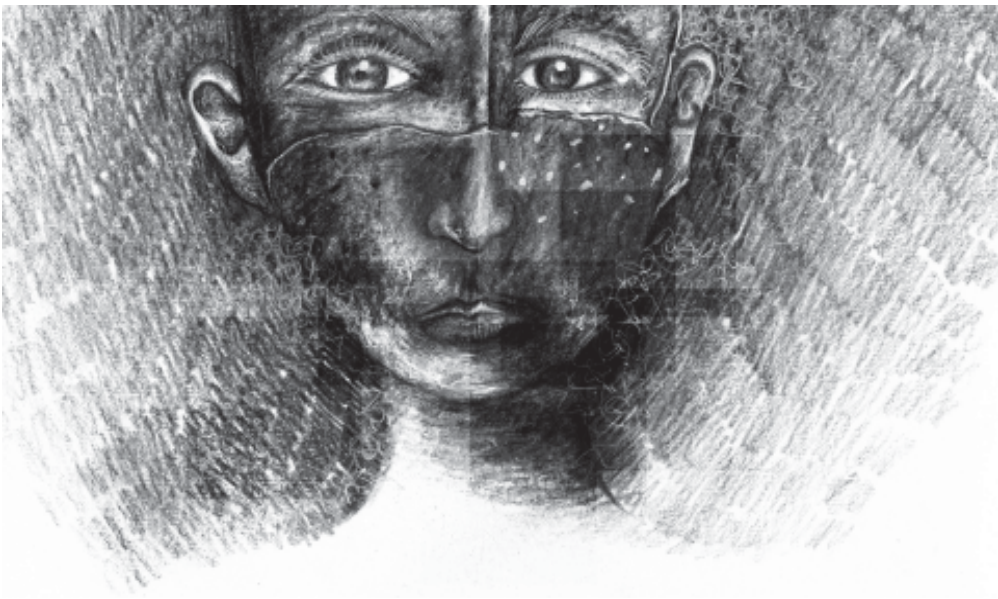

जवाब देने से भी ज़रूरी है सवाल पूछना

मोहम्मद ज़फर

मुझे याद है जब मैं स्कूल में था तो अक्सर शिक्षक बच्चों से कोई न कोई सवाल पूछते थे (जैसा कि हर स्कूल में होता ही है) और वह भी ज़्यादातर उन बच्चों से जो कक्षा में अक्सर चुप-चाप बैठे रहते थे। कभी-कभी तो सवाल ऐसे डरावने तरीके से पूछे जाते थे कि आता हुआ जवाब भी दिमाग से उड़ जाए। कई बार तो कुछ बच्चे इसलिए नहीं बोलते थे कि उन्हें जवाब नहीं पता होता था या कई बार उसमें रुचि न होने से कक्षा में ही ध्यान नहीं होता था, या कुछ बच्चे शर्मीले होने के कारण जवाब पता होने के बावजूद नहीं बोल पाते थे। और शिक्षक जवाब ना देने पर भारी-भरकम संवादों से उन्हें कक्षा के उपहास का पात्र बना देते थे। एक समय ऐसा भी आता था जब शिक्षक जानबूझ कर उन्हीं बच्चों से प्रश्न पूछते थे जो उनकी कक्षा में हाज़िरजवाब होते थे; और वह समय होता था इंस्पेक्शन का जब बाहर से अधिकारी भ्रमण पर आते थे।

क्यों नहीं पूछते सवाल?

मेरे शायद कुछ ही शिक्षक ऐसे थे जो बच्चों से जवाब माँगने की बजाय उन्हें सवाल पूछने को कहते थे, जैसे "किसी को कुछ पूछना है, समझ आया या नहीं?", "ना समझ आया हो तो फिर से पूछिए" आदि। मगर इसकी भी एक दिक्कत थी। कहा तो जाता था पूछने को, लेकिन एक-दो बार बताने के बाद भी यदि समझ ना आए और अधिक बार पूछ लिया जाए तो दुगनी डाँट पड़ती थी। उस पर इल्ज़ाम लगना कि "कहाँ था ध्यान?", "बाकी बच्चे तो समझ गए, आप क्या कर रहे थे?" कुछ शिक्षक बाद में समझाने को भी कहते थे। पर इन सब में सबसे अजीब बात यह थी कि कक्षा में पहले से ही डरे-सहमे बैठे बच्चे कभी भी सवाल पूछने के लिए प्रेरित नहीं किए जाते थे।

हाँ, ऐसा भी नहीं था कि सभी बच्चे ऐसा ही करते थे। कुछ तो हमेशा सवाल दागते रहते थे। मगर सवाल पूछने की जो एक आदत होती है उसे विकसित करने में मेरे स्कूल ने कभी मदद नहीं की। आज हम जानते हैं कि बच्चे जो अपने पूर्व-अनुभवों से सीखते हैं उसका असर उनके वर्तमान और भविष्य पर भी रहता है। कई बार घर में ही पाबन्दियों (ज़्यादा बकवास करते हो, ये न करो, वो न करो) के चलते बच्चे खुल नहीं पाते और आखिर में वही व्यवहार उनका स्कूल में भी होता है। इसके कई और भी कारण हो

सकते हैं जैसे किसी विषय में आत्म-विश्वास ना होना, सवाल के बचकाने लगने का डर, दूसरों के सामने समझ में ना आने का राज़ खुलना इत्यादि।

शिक्षकों को इस बात का खयाल रखना चाहिए कि बच्चों में इस तरह

का आत्मविश्वास जगाएँ जो उन्हें प्रश्न उठाने को प्रेरित करे, छोटे-बड़े सभी तरह के सवालों को बिना किसी हिचकिचाहट के पूछने को प्रेरित करे क्योंकि प्रश्न न सिर्फ हमारे विचारों को स्पष्ट करते हैं बल्कि कई बार अपने तर्क रखने के लिए भी जगह देते हैं। प्रश्न किसी भी विषय की चर्चा को और व्यापक स्तर पर खोलते हैं वरना हाल ऐसा हो जाए कि शिक्षक, प्रशिक्षक अपनी कथा सुनाकर चले जाएँ और कोई अन्य विचार आए ही ना। अगर विज्ञान की बात करें तो इस विषय में तो सन्देहों, अटकलों और प्रश्न पूछने की भूमिका और भी बढ़ जाती है। जैसे कि रिचर्ड फाइनमेन का कहना था कि पुरानी बातों को आँख मूँदकर मान लेने की बजाय उन पर सन्देह करना और खुद परखने के बाद उन्हें सही मानना ही विज्ञान का पहला और महत्वपूर्ण चरण है। और यह शुरुआत होती है प्रश्न पूछने से, चाहे वह खुद से जवाब ढूँढ़ने में लग जाना हो या फिर औरों से उस बाबत ज़िक्र और विचार-विमर्श करना हो।

हमने अक्सर छोटे बच्चों को देखा है, अनगिनत सवाल करते हुए। बदले में उन्हें मिलता क्या है, कई बार गोल-मोल जवाब और ज़रूरत से अधिक पूछने पर डाँट। हमें चाहिए कि बच्चों को अधिक-से-अधिक सवाल पूछने के लिए प्रेरित किया जाए और यह ऐसे तरीकों से कराया जाए कि उन्हें पता ही न चले और वे खुद ही बेचैन होकर सवाल करने लगें। बच्चे अधिकतर उन बातों में आपका प्रतिरोध करेंगे जिन पर वे जानते हैं कि वे सही हैं। हाँ, इसमें उनकी झेंप भी होगी कि शिक्षक को कैसे गलत साबित कर दें इत्यादि।

बच्चों को किया प्रेरित

मैंने कई विद्यालयों में भ्रमण के दौरान ऐसी ही एक तरकीब अपनाई और ऐसा मान सकते हैं कि उसमें मैं काफी हद तक सफल भी रहा। बच्चों से बातचीत के दौरान मैं उन्हें एकदम गम्भीर तरीके से कुछ बताता, कभी कहानी के रूप में तो कभी पर्यावरण शिक्षा या विज्ञान से जोड़कर तथ्य के रूप में। जैसे मैं उन्हें भ्रम में डालने के लिए उलटी बात शुरू करता, "तो गाय किस-किस ने देखी है बच्चों?" जवाब में कुछ बच्चों के हाथ उठते और कुछ बोल कर बताते कि गाय देखी है।

"अच्छा...क्या बात है... तो गाय सबने देख रखी है, वाह...वाह... अच्छा तो अब मैं गाय के बारे में बताता हूँ, सुनना। गाय पतली-सी रस्सी जैसी होती है और काले, भूरे रंगों में अधिकतर झाड़ी के पास रेंगती दिख जाती है। एक दिन वो मेरे पैर के पास से गई और सरसराते हुए झाड़ी में रेंग के घुस गई।"

इस पूरे कथन पर बच्चों की बड़ी मज़ेदार प्रतिक्रियाएँ आती थीं। कुछ मुस्कुराते हुए एक-दूसरे का मुँह ताकते

थे तो कुछ संशय से धीरे-धीरे हँसते हुए कहते थे, "हैं, ये क्या?" और कुछ तो एकदम ठहाके मारकर हँसने लगते थे। कभी-कभी बच्चे तुरन्त हँसते हुए विरोध में कहने लगते, "गुरुजी, ये गाय थोड़ी ना है हा...हा...हा..., गाय ऐसे थोड़ी न चलती है जी, ऐसे तो साँप चलता है।"

मैं फिर चौंककर कहता, "हैं, क्या बात कर रहे हो, गाय ये नहीं है तो फिर क्या है? यही तो होती है गाय।" बच्चे फिर और विस्तार से बताने में लग जाते, "गुरुजी गाय तो बड़ी-सी, खड़ी होकर चलती है, सींग होते हैं, कान होते हैं।" मैं उनसे चौंकने की मुद्रा में पूछता जाता, "हैं, अच्छा वो बोलती कैसे है?" और फिर कई तरफ से बच्चों की गाय जैसी 'बाँ' शुरू हो जाती। यहाँ मैं उन बच्चों से भी पूछने चला जाता जो शर्मीले-से बैठे गुरुजी के उलटे ज्ञान पर मुस्कुराते रहते थे। मैं बच्चों को यहीं नहीं छोड़ता। इसके बाद बकरी की जगह कुत्ते की विशेषताएँ बताता और कुत्ते की बजाय बकरी की, अखरोट को लड्डू से मिला देता और कहता कि अखरोट हलवाई की दुकान में रखी लाल रंग की मिठाई होती है।

अब बच्चे मस्ती में मुझे धड़ा-धड़ सही जवाब देने और सुधारने में लग जाते। यहाँ मैंने बच्चों से यह नहीं पूछा, "गाय के बारे में बताओ, या अखरोट कैसा होता है? किसे-किसे पता है?" बल्कि मैंने सिर्फ अपनी बात ऐसे ढंग से कही कि बच्चे बेचैन होकर खुद सवाल-जवाब करने को मजबूर हो गए और वो भी मज़े-मज़े में। इस तरह कई स्कूलों में यह हथकण्डा बेहद मज़ेदार रहा जिससे बच्चों ने मेरी ही बात को अपनी रोज़मर्रा की जानकारी और व्यावहारिक ज्ञान से गलत साबित किया और पूरे आत्मविश्वास के साथ सही करके बताया।

अब अगर हम इन्हीं बातों को अपने विषयों के साथ और पिरो दें जैसे कि मैंने यह कह दिया, "पेड़ क्या जीवित होते हैं? मैं तो यह नहीं मानता। तुममें से कोई मानता है?" तो ज़ाहिर-सी बात है बच्चे उसे सही साबित करने में लग जाएँगे और यहीं हम अपने सवाल और भ्रामक जानकारी का बहाना बनाकर उन्हें खेल-खेल में उनके ही द्वारा दिए गए तर्कों का इस्तेमाल करते हुए किसी अवधारणा

को समझाने के करीब आ सकते हैं। फिर अगर मैं उस बात को आगे बढ़ाऊँ और पूछूँ कि पेड़ के पास किचन तो है नहीं तो कैसे बनाएँगे खाना? तब शायद कोई जवाब आए कि पत्तियों से। फिर मैं पूछूँ कि पत्तियाँ तो इतनी छोटी होती हैं, क्या तुमने उन्हें खाना बनाते हुए देखा है? फिर बच्चे किताबी बातों का सहारा लेकर कुछ-न-कुछ कहेंगे और फिर उसका सहारा लेकर हम उन्हें इतना उलझा दें कि वे खुद ही सोचने और प्रश्न पूछने पर मजबूर होते जाएँ। इस तरह के कई तरीके हो सकते हैं जिनसे खेल-खेल में हम बच्चों को अपने तर्कों को रखने और सवाल पूछने को प्रेरित कर सकते हैं।

निष्कर्ष

मुझे लगता है कि किसी भी सवाल पर हँसना तो गलती से भी नहीं चाहिए। अगर बच्चे हँसते हैं तो उन्हें भी समझा देना चाहिए कि दुनिया में कोई भी सवाल गलत नहीं होता। हम सब अलग-अलग तरह से बातों को समझते और परखते हैं इसलिए सवाल पूछना हर बच्चे का हक है जिसे दबने नहीं देना चाहिए फिर चाहे वह कक्षा हो या घर। अन्यथा झेंपने वाला व्यवहार बन जाने के बाद बच्चे आगे भी वैसे ही रह जाते हैं और किसी भी सही-गलत बात पर अपने विचार रखने में हिचकिचाते ही रहेंगे चाहे वह खुद के अधिकारों की बात हो, या किसी शोषण के खिलाफ बोलने की या बँधी मान्यताओं या रूढ़ियों पर प्रश्न उठाने की बात हो। सवाल उठते रहें तभी तो जवाब मिलेंगे।

एन.सी.एफ. 2005 हो या विज्ञान शिक्षण के फोकस ग्रुप का आधार-पत्र, हर जगह इस बात को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है कि बच्चों को प्रश्न पूछने की ओर प्रेरित किया जाए। प्रश्न उठेंगे तो जवाब ढूँढ़ने की बेचैनी होगी, परिकल्पना बनेगी और बच्चे उसके उत्तर खोजने के लिए प्रयत्न करेंगे।

मोहम्मद ज़फर: अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, उत्तरकाशी (उत्तराखण्ड) में कार्यरत हैं।
सभी चित्र: विदुषी यादव: आई.डी.सी., आई.आई.टी. बॉम्बे से एनीमेशन में स्नातकोत्तर। स्वतंत्र रूप से एनीमेशन फिल्में बनाती हैं और चित्रकारी करती हैं।